ISSN 2277-5897 SABLOG
PEER REVIEWED JOURNAL

142

लोक चेतना का राष्ट्रीय मासिक

# सबलोग

नवम्बर-दिसम्बर 2025 • ₹ 100

## बिहार का जनादेश और जनजीवन

झारखण्ड 25 अनंत संभावनाओं की ओर

- जब प्रतिक्रान्ति पुरखों को खाती है
- विश्व जलवायु परिवर्तन की चुनौतियाँ
- सर सैयद से मुलाकात

झारखण्ड
25
अनंत संभावनाओं की ओर
मुख्य अतिथि
श्री संतोष कुमार गंगवार
माननीय राज्यपाल, झारखण्ड
अध्यक्षता
श्री हेमन्त सोरेन
माननीय मुख्यमंत्री, झारखण्ड
विशिष्ट अतिथि
श्री के. राजू
ए.आई.सी.सी. के सी. डब्ल्यू.सी. के स्थायी आमंत्रित सदस्य एवं झारखण्ड प्रभारी
सम्मानित अतिथि
श्री संजय सेठ
माननीय केन्द्रीय रक्षा राज्य मंत्री
श्री राधा कृष्ण किशोर
माननीय मंत्री, झारखण्ड सरकार
श्री संजय प्रसाद यादव
माननीय मंत्री, झारखण्ड सरकार
श्री दीपक प्रकाश
माननीय संसद सदस्य, राज्य सभा
श्रीमती महुआ माजी
माननीय संसद सदस्य, राज्य सभा
श्री आदित्य प्रसाद साहू
माननीय संसद सदस्य, राज्य सभा
श्री प्रदीप कुमार वर्मा
माननीय संसद सदस्य, राज्य सभा
श्री चन्द्रेश्वर प्रसाद सिंह
माननीय सदस्य, झारखण्ड विधान सभा
स्कैन करें और झारखण्ड राज्य के रजत पर्व उत्सव के सहभागी बनें!
दिनांक: 15 नवम्बर, 2025 | समय: अपराह्न 02.00 बजे
स्थान: मोरहाबादी मैदान, रांची
श्री संतोष कुमार गंगवार
माननीय राज्यपाल, झारखण्ड
श्री हेमन्त सोरेन
माननीय मुख्यमंत्री, झारखण्ड
सूचना एवं जनसंपर्क विभाग, झारखण्ड सरकार

# सबलोग-142

वर्ष 16, अंक 9, नवम्बर-दिसम्बर 2025 (संयुक्तांक)

ISSN 2277-5897 SABLOG
PEER REVIEWED JOURNAL
www.sablog.in



**सम्पादक**
किशन कालजयी
**संयुक्त सम्पादक**
प्रकाश देवकुलिश
राजन अग्रवाल
**उप-सम्पादक**
गुलशन चौधरी
**ब्यूरो**
उत्तर प्रदेश : शिवाशंकर पाण्डेय
बिहार : कुमार कृष्णन
झारखण्ड : विवेक आर्यन
**समीक्षा समिति (Peer Review Committee)**
आनन्द कुमार
रत्नेश्वर मिश्र
मणीन्द्र नाथ ठाकुर
मंजु रानी सिंह
सफदर इमाम कादरी
प्रमोद मीणा
राजेन्द्र रवि
मधुरेश
महादेव टोप्पो
विजय कुमार
आशा
सन्तोष कुमार शुक्ल
अखलाक 'आहन'
अभय सागर मिंज



**सम्पादकीय सम्पर्क**
बी-3/44, तीसरा तल, सेक्टर-16,
रोहिणी, दिल्ली-110089
+918340436365
**sablogmonthly@gmail.com**

**सदस्यता शुल्क**
यह अंक : 100 रुपये—वार्षिक : 600 रुपये
रजिस्टर्ड डाक खर्च समेत 1100 रुपये
**सबलोग**
खाता संख्या-49480200000045
बैंक ऑफ बड़ौदा,
शाखा-बादली, दिल्ली
IFSC-BARB0TRDBAD
(Fifth Character is Zero)

स्वामी, सम्पादक, प्रकाशक व मुद्रक किशन कालजयी द्वारा बी-3/44, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली-110089 से प्रकाशित और लक्ष्मी प्रिण्टर्स, 556 जी.टी. रोड शाहदरा दिल्ली-110032 से मुद्रित।



पत्रिका में प्रकाशित आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के हैं, उनसे सम्पादकीय सहमति अनिवार्य नहीं।

**पत्रिका अव्यावसायिक और सभी पद अवैतनिक।**

**पत्रिका से सम्बन्धित किसी भी विवाद के लिए न्यायक्षेत्र दिल्ली।**


**संवेद फाउण्डेशन का मासिक प्रकाशन**

## बिहार का जनादेश और जनजीवन


मुनादी / **किशन कालजयी :** जनादेश की नयी लिपि और बदलती राजनीतिक चेतना **4**
स्मृति, स्वप्न और यथार्थ का टकराव **: रविभूषण 6**
बिहारी समाज का कायान्तरण **: शशिभूषण 9**
बदलती राजनीति की नयी आवाज **: मणीन्द्र नाथ ठाकुर 13**
बिहार चुनाव और पलायन : **अरविन्द मोहन 16**
महिला मतदाताओं की निर्णायक भूमिका **: शिवदयाल 18**
नयी सरकार से जन-अपेक्षाएँ **: व्यास जी 20**
वैचारिक संकट और नये विकल्पों की खोज **: सतीश कुमार झा 23**
राजग की वापसी में आधी आबादी की भागीदारी **: पवन सिंह 25**
राजनीति और नेतृत्व की बदलती दिशा **: कुमार कृष्णन 27**
जल संकट और विकास की नयी चुनौतियाँ **: रुचि श्री 29**

**सृजनलोक**

नौ कविताएँ : **अनिल कार्की**, टिप्पणी : **चेतन कश्यप,** रेखांकनः **पंकज दीक्षित 31**

**विशेष लेख**

जब प्रतिक्रान्ति पुरखों को खाती है **: प्रेम सिंह 33**

**झारखण्ड के 25 वर्ष**

आदिवासी उद्यमिता और सांस्कृतिक पुनर्जागरण **: महादेव टोप्पो 38**
उत्सव के बीच अधूरे सपनों की पड़ताल **: घनश्याम 40**
विकास, विसंगतियाँ और भविष्य की दिशा **: सुधीर पाल 42**
खनिज-सम्पदा से जुड़े सवाल **: संजय कृष्ण 44**

**देश**

बिहार / बदलती पृथ्वी और बुझते जलस्रोत **: प्रदीप कान्त चौधरी 46**
हरियाणा / किसानों को रास आया पराली प्रबन्धन **: अजय सिंह 49**
मध्य प्रदेश / निजीकरण के सौ बहाने **: राज कुमार सिन्हा 52**

**स्तम्भ**

तीसरी घण्टी / रंगमंच पर सत्ता की छाया **: राजेश कुमार 53**
यत्र-तत्र / रचना की समझ के आस-पास **: जय प्रकाश 56**
देशान्तर / विश्व जलवायु परिवर्तन की चुनौतियाँ **: धीरंजन मालवे 59**
परती परिकथा / लोकप्रिय सिनेमा और धर्मेन्द्र **: हितेन्द्र पटेल 62**
कविताघर / दूर के रिश्तेदारों के दुःख की तरह **: प्रियदर्शन 65**

**विविध**

स्मरण / सच्चिदा बाबू : एक मुलाकात, अनेक अन्तर्दृष्टियाँ **: शर्मिला जालान 67**
साहित्य / अनुभूति की रोशनी में लिखा गया प्रभाववाद **: शैलेन्द्र चौहान 69**
शिक्षा / शिक्षा का बाजारीकरण और राज्य **: अनिल कुमार राय 71**
शहरनामा / बोधगया की बेटियाँ और साइकिल **: राजेन्द्र रवि 73**
आयोजन / सर सैयद से मुलाकात **: सफदर इमाम कादरी 76**
सिनेमा / अस्मिता की भूख और आजादी की त्रासदी **: रक्षा गीता 78**
पुस्तक समीक्षा / स्वधर्म और स्वराज का तजुर्बा **: ध्रुव शुक्ल 81**
लिये लुकाठी हाथ / करती हो तुम 'एआई', मेरा नाम हो रहा... **: गिरीश पंकज 82**


**आवरण : शशिकान्त सिंह**

**अगला अंक : नवजागरण, वन्देमातरम और बंगाल**

# जनादेश की नयी लिपि और बदलती राजनीतिक चेतना

बिहार विधानसभा चुनाव का परिणाम किसी साधारण चुनावी-प्रक्रिया का अन्त नहीं, बल्कि राज्य की राजनीतिक चेतना में आए गहरे परिवर्तन का संकेत है। राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन (राजग) की भारी विजय और महागठबन्धन (काँग्रेस, राजद, वीआईपी) की ऐतिहासिक पराजय यह बताती है कि बिहार का मतदाता अब पुराने जातीय समीकरणों, भावनात्मक अपीलों और बिखरी हुई उम्मीदों को पीछे छोड़ चुका है। वह ऐसे भविष्य की ओर बढ़ रहा है, जहाँ शासन, स्थिरता और सामाजिक सम्मान निर्णायक मूल्य बन चुके हैं।

इस चुनाव का सबसे महत्त्वपूर्ण संकेत महिला मतदाताओं की रिकॉर्ड उपस्थिति में निहित है। यह केवल एक सांख्यिकीय उपलब्धि नहीं, बल्कि पिछले दो दशकों में हुए सामाजिक हस्तक्षेपों का ठोस परिणाम है। मुख्यमन्त्री महिला रोजगार योजना के तहत मिली आर्थिक सहायता को 'लुभावनापन' कहने वाले यह समझने में असफल रहे कि यह राशि महिलाओं के लिए सरकारी संरक्षण, आत्मसम्मान और स्वायत्तता का प्रतीक बन चुकी थी। पहली बार बिहार की महिलाओं ने मतपत्र पर केवल किसी दल या चुनाव-चिह्न को नहीं, बल्कि अपने भीतर पैदा हुई नयी राजनीतिक चेतना और स्वायत्त विवेक को वोट दिया। यही वे महिलाएँ हैं जो 2010 में नीतीश सरकार द्वारा दी गयी स्कूल ड्रेस पहनकर साइकिल से विद्यालय जाती थीं। इस चुनाव में महिलाओं ने न सिर्फ परिणाम को प्रभावित किया, बल्कि उसके चरित्र को भी बदल दिया।

नीतीश कुमार की जीत को 'दस हजार रुपये की रेवड़ी' से जोड़कर देखने की बहस दरअसल राजनीतिक नैतिकता के चयनात्मक इस्तेमाल का उदाहरण है। सच यह है कि चुनावी लाभ के लिए लोक-लुभावन योजनाओं का सहारा कोई नया या किसी एक दल तक सीमित चलन नहीं है। जयललिता से लेकर केजरीवाल, काँग्रेस सरकारों से लेकर हेमन्त सोरेन तक—सभी ने सत्ता और चुनाव के सन्धि-काल में ऐसी योजनाएँ घोषित भी की हैं और लागू भी। झारखण्ड में चुनाव की घोषणा और आचार संहिता लागू होने से ठीक पहले 'मुख्यमन्त्री मईयाँ सम्मान योजना' की किस्त महिलाओं के खातों में भेजी गयी, और चुनाव से कुछ दिन पहले अगली किस्त तथा बढ़ोत्तरी का ऐलान भी हुआ। उस समय राजद और काँग्रेस सहित सत्तारूढ़ गठबन्धन के किसी नेता को इसमें न वोट खरीद दिखा, न आचार संहिता का उल्लंघन। आर्थिक प्रलोभनों के सहारे चुनाव जीतने की कोशिश करने वाली किसी भी सरकार की कार्रवाई को राजनीतिक कुकृत्य के अलावा कुछ और नहीं कहा जा सकता। यह कुकृत्य कल्याणकारी योजनाओं के आवरण में भी वैध नहीं ठहराया जा सकता। लोकतन्त्र के लिए यह न केवल अत्यन्त घातक है, बल्कि राजनीतिक अनैतिकता की चरम अवस्था का उद्घाटन भी करता है। यह महज योजनाओं का प्रश्न नहीं, बल्कि सत्ता द्वारा संवैधानिक मर्यादाओं को जान-बूझकर रौंदने की प्रवृत्ति का स्पष्ट प्रमाण है। ऐसे कृत्यों पर तत्काल और निर्णायक हस्तक्षेप करना सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक जिम्मेदारी है।

यह मानना भी एक अधूरी व्याख्या होगी कि यह जीत केवल महिला मतों के सहारे आयी। इसकी दूसरी परत और गहरी है। मण्डल राजनीति की पुरानी संरचना अब टूट चुकी है और उसकी जगह एक जटिल, बहुस्वरीय सामाजिक विन्यास उभरा है, जिसमें अति पिछड़े, महादलित और पसमान्दा समुदाय निर्णायक भूमिका में हैं। नीतीश कुमार ने इस सामाजिक भूगोल को वर्षों में गढ़ा और भाजपा ने उसे अपने वैचारिक ढाँचे में समाहित कर लिया। इस मेल ने उस सामाजिक आधार को कमजोर कर दिया, जिस पर राजद की राजनीति तीन दशकों से टिकी रही थी। महागठबन्धन की पराजय का मूल कारण यही रहा कि उसने बिहार के इस नये सामाजिक-राजनीतिक भूगोल को पढ़ने की कोशिश ही नहीं की। तेजस्वी यादव ने नेतृत्व को केवल राजनीतिक अधिकार के रूप में देखा और सामाजिक संवेदना, साझी सहमति तथा प्रतीकात्मक सम्मान के महत्त्व को लगातार नजरअन्दाज किया। मुकेश साहनी को केन्द्र में रखकर गढ़ी गयी रणनीति जल्दी ही बिखर गयी। पिछड़ों की राजनीति में उभर रही नयी सम्भावनाओं को न पहचाना गया, न उन्हें किसी ठोस राजनीतिक दिशा में बदला जा सका।

मुस्लिम राजनीति के प्रश्न पर भी वही अहंकारपूर्ण उदासीनता दिखी, जिसने पुराने एम-वाई समीकरण को भीतर से खोखला कर दिया। सत्ता-साझेदारी को लेकर की गयी चुनाव-पूर्व घोषणाओं ने इस पराजय की नींव रख दी। यह सन्देश स्पष्ट था कि मुख्यमन्त्री 14 प्रतिशत (यादव) का होगा, उप-मुख्यमन्त्री 3 प्रतिशत (निषाद) का, और 18 प्रतिशत (मुसलमान) वाला समुदाय केवल वोट देने के लिए है। यह कोई फिसलन भरा बयान नहीं, बल्कि गठबन्धन की मानसिक संरचना का अनायास उद्घाटन था। काँग्रेस द्वारा जातिगत प्रतिशत के आधार पर सत्ता के पद बाँटने से जो सन्देश गया, वह अपमानजनक था। पसमान्दा मुसलमानों को 'दरी बिछाने' और 'झोला ढोने' जैसी प्रतीकात्मक भूमिकाओं तक सीमित करने का भाव न केवल असंवेदनशील था, बल्कि गठबन्धन की राजनीति को भी उजागर करता था। जिस मंच से यह कहा गया, वहाँ अब्दुल बारी सिद्दीकी जैसे वरिष्ठ नेता मौजूद थे—वही नेता जिन्हें अतीत में मुसलमान मुख्यमन्त्री की माँग (रामविलास पासवान) के समय भी दरकिनार किया गया था।

इसका सीधा असर यह हुआ कि मुस्लिम मतदाताओं के भीतर गहरी विवशता और अपमान की भावना पैदा हुई और पहली बार कई मुस्लिम-प्रभावित सीटों पर राजग को अप्रत्याशित लाभ मिला। भाजपा का भय दिखाकर मुसलमानों से वोट लेने की रणनीति इस बार उलटी पड़ गयी। मुसलमानों और गरीब तबकों ने देखा कि नीतीश के शासन में क्रान्तिकारी परिवर्तन न हुए हों, लेकिन प्रशासनिक स्थिरता, योजनाओं और सामाजिक सुरक्षा का एक न्यूनतम भरोसा तो रहा। इसके विपरीत, लालू शासन की स्मृतियाँ आज भी अराजकता, अपराध और जातीय वर्चस्व से जुड़ी हैं। भय की राजनीति अन्ततः भरोसे की राजनीति से हार गयी।

महागठबन्धन की हार में उसकी तथाकथित सांस्कृतिक राजनीति, कार्यकर्ताओं की अराजक सक्रियता और गठबन्धन के भीतर गहरे आपसी टकराव की भूमिका भी कम निर्णायक नहीं रही। कई विधानसभा क्षेत्रों में स्थिति यह थी कि महागठबन्धन की घटक पार्टियाँ राजग से कम और एक-दूसरे से अधिक संघर्षरत दिखाई दीं। चुनाव के दौरान सार्वजनिक स्थलों और सोशल मीडिया पर उछाले गये गीत-नारे और आक्रामक प्रदर्शन ने विशेषकर

महिलाओं और कमजोर तबकों में भय और असहजता पैदा की। तेजस्वी यादव ने ऐसे तत्त्वों पर समय रहते लगाम कसने के बजाय उन्हें संरक्षण दिया। यह अराजक उत्सव और अन्तर्कलह अन्ततः आत्मघाती सिद्ध हुए। चुनाव के बाद कुछ कलाकारों को नोटिस भेजना या मानहानि के मुकदमों की बात करना सच्ची आत्मालोचना नहीं, बल्कि देर से आया एक औपचारिक पश्चाताप-भर प्रतीत होता है। इस चुनाव में हेर-फेर और प्रशासनिक धाँधली की सम्भावना से इनकार इसलिए नहीं किया जा सकता कि यह राजनीतिक कुकर्म सत्ता के साथ ऐतिहासिक रूप से जुड़ा रहा है। लेकिन इतनी बड़ी जीत और पराजय को केवल धाँधली से नहीं समझा जा सकता। इसके लिए जनता के मानस में आए बदलाव को स्वीकार करना ही होगा। नीतीश कुमार के आचार-व्यवहार से यह स्पष्ट है कि वे शारीरिक और मानसिक रूप से थक चुके हैं, और उनकी यह थकान कई बार उनके सार्वजनिक आचरण में भी झलकती है। इस पर सवाल उठना स्वाभाविक है। एक वरिष्ठ और अनुभवी राजनेता के रूप में उन्हें सम्मानपूर्ण विदाई देने का अब वक्त आ गया है। लेकिन मौजूदा राजनीतिक परिस्थितियाँ—चाहे भाजपा का दबाव हो या जदयू की सीमाएँ—इस तरह के निर्णय की गुंजाइश नहीं छोड़तीं। मण्डल राजनीति के प्रमुख अगुवा लालू प्रसाद यादव, नीतीश कुमार और रामविलास पासवान रहे हैं। इनमें केवल लालू यादव ऐसे नेता रहे जिन्होंने भाजपा के समक्ष कभी वैचारिक आत्मसमर्पण नहीं किया। किन्तु चारा घोटाले में अपराध-सिद्धि के बाद उनका सक्रिय राजनीतिक अध्याय लगभग समाप्त हो गया। नीतीश कुमार पर व्यक्तिगत भ्रष्टाचार या परिवारवाद के आरोप नहीं लगे हैं। एक हद तक वह राजनीतिक-सामाजिक मूल्यों की परवाह भी करते हैं। इसलिए सत्ता की राजनीति में बार-बार करवट बदलने और सत्ता-सन्तुलन के लिए अपनी धर्मनिरपेक्ष-समाजवादी छवि से समझौता करने जैसी सीमाओं के बावजूद, वे बिहार की राजनीति में अब भी एक सर्वमान्य और व्यापक रूप से स्वीकार्य नेता बने हुए हैं।

विकास, सुशासन और स्थिरता की राजनीति भी इस जनादेश का एक महत्त्वपूर्ण स्तम्भ है। आर्थिक आँकड़ों पर विवाद हो सकता है, लेकिन जनमानस में यह धारणा गहराई से बैठ चुकी है कि पिछले डेढ़ दशक में राज्य ने एक न्यूनतम स्थिरता हासिल की है। 'जंगल राज' की स्मृति आज भी बिहार की राजनीति में प्रेतछाया की तरह मौजूद है। राजग ने इस स्मृति को कथा बनाकर अपने चुनावी अभियान का 'हथियार' बनाया और राजद इसका विश्वसनीय प्रत्युत्तर नहीं दे सका। तेजस्वी यादव का 'नौकरी' का वादा भी युवा मतदाताओं को आकर्षित नहीं कर पाया, क्योंकि उम्मीद और भरोसा अलग-अलग चीजें होती हैं—और इस चुनाव में भरोसा राजग के हिस्से गया। काँग्रेस की स्थिति लगभग ढह चुके ढाँचे जैसी है। बेतुका सीट बँटवारा, नेतृत्व की अपरिपक्वता और राजनीतिक जमीन से दूरी ने उसे बिहार में लगभग अप्रासंगिक बना दिया है। राष्ट्रीय राजनीति में भी वह एक विस्थापित इकाई की तरह खड़ी है—जिसके पास न विचार की स्पष्टता है, न संगठन की दृढ़ता, न नेतृत्व की ऊर्जा।

विकल्प की राजनीति का भ्रम भी इस चुनाव में टूट गया। प्रशान्त किशोर की जनसुराज परियोजना को जितनी चर्चा मिली, उतनी जमीन नहीं। 'नयी राजनीति' का दावा अन्ततः पुराने चेहरों और पुराने तौर-तरीकों में सिमट गया। हाँ, बेरोजगारी और भ्रष्टाचार को चुनावी-विमर्श के केन्द्र में लाने का श्रेय जनसुराज को दिया जा सकता है।

इस चुनाव में कम्युनिस्ट पार्टियों—विशेषकर भाकपा-माले की लगभग अनुपस्थिति किसी एक दल की पराजय-भर नहीं है। यह उस वैकल्पिक राजनीतिक परम्परा के सिमटने का संकेत है, जिसने बिहार में दशकों तक भूमि, श्रम, समानता और सम्मान की राजनीति को नैतिक आधार दिया था। यह पराजय दरअसल एक विचारधारा, एक राजनीतिक आचरण और एक लोकतान्त्रिक सम्भावना के संकुचन की कथा है। बिहार में भाकपा-माले एक विशिष्ट अपवाद के रूप में उभरी थी। नक्सल आन्दोलन की पृष्ठभूमि से निकलकर 1981 के बाद उसने अहिंसक जनसंघर्ष का रास्ता चुना और जाति-आधारित सत्ता की राजनीति के प्रतिपक्ष में खड़ी हुई। मध्यवर्ती जातियों, अन्य पिछड़ों और दलित समुदायों के बीच उसने वैचारिक रूप से प्रतिबद्ध, संसाधन-विहीन लेकिन चरित्रवान कैडर तैयार किया। 2020 में 11 विधायकों से 2025 में मात्र दो पर आ जाना एक गहरे राजनीतिक विच्छेदन की कहानी है। सवाल यह नहीं कि माले हारी क्यों, बल्कि यह है कि बिहार की राजनीति में वह जगह क्यों सिकुड़ी, जो कभी संघर्ष, नैतिक दबाव और वैचारिक हस्तक्षेप से भरी रहती थी।

वामपन्थ बिहार में कभी केवल संसदीय शक्ति नहीं रहा। वह हाशिये के समाजों के संघर्षों का प्रतिनिधि था। आज जब राजनीति सम्मान, स्थिरता और कल्याण की भाषा में पुनर्गठित हो रही है, तब यह सवाल और तीखा हो जाता है कि वही वामपन्थ इस नये जनमानस से क्यों कट गया। जाति और वर्ग के बीच फँसी उसकी राजनीति न स्वयं को नये सन्दर्भों में ढाल सकी, न सत्ता पर नैतिक दबाव बनाए रख पायी। वामपन्थ का कमजोर होना सीटों की कमी नहीं, उस नैतिक दबाव का क्षरण है जो सत्ता को भीतर से लोकतान्त्रिक बनाता है।

बिहार का यह जनादेश केवल सत्ता-परिवर्तन की नहीं, राजनीतिक कल्पना के पुनर्निर्माण की माँग करता है। लोकतन्त्र केवल सरकार से नहीं, एक मजबूत और विश्वसनीय विपक्ष से चलता है। महागठबन्धन की यह पराजय स्वस्थ लोकतन्त्र के लिए शुभ संकेत नहीं है। मीडिया को विपक्ष की भूमिका निभानी चाहिए थी, लेकिन उसका बड़ा हिस्सा सत्ता-समर्पण में लिप्त है।

अब प्रश्न केवल सत्ता-परिवर्तन का नहीं, बल्कि वैचारिक दिशा का है। क्या बिहार सचमुच किसी नये वैचारिक मोड़ पर खड़ा है? क्या समाजवादी–मण्डलवादी राजनीति अपने ऐतिहासिक चरण को पूरा कर चुकी है, या वह नये सन्दर्भों में पुनः गढ़े जाने की माँग कर रही है? और क्या भाजपा बिहार के जटिल सामाजिक ताने-बाने को वैचारिक रूप से अपने अनुकूल ढाल पाने में सफल होगी? इन प्रश्नों के उत्तर न तो सरल हैं, न तात्कालिक। बिहार की सामाजिक संरचना बहुस्तरीय है, जिसमें स्मृतियाँ, आकांक्षाएँ और आशंकाएँ एक-दूसरे से गुँथी हुई हैं। नीतीश कुमार की मौजूदगी इस वैचारिक संक्रमण को एकरेखीय बनने से रोकती रहेगी।

फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि सामाजिक न्याय की राजनीति अब अपने पुराने मुहावरों में लौटने की स्थिति में नहीं है। उसे नया नैतिक आधार, नया नेतृत्व और नये सामाजिक-राजनीतिक समीकरण तलाशने होंगे। यह चुनाव बता गया है कि बिहार बदलाव चाहता है, पर अव्यवस्था नहीं; सम्भावना चाहता है, पर असुरक्षा नहीं; सम्मान चाहता है, पर उपेक्षा नहीं। यह जनादेश राजग के लिए जितना अवसर है, उतनी ही बड़ी जिम्मेदारी भी। सत्ता को यह समझना होगा कि यह विजय किसी दल या व्यक्ति की नहीं, बल्कि एक समाज की सामूहिक उम्मीदों का भार है। अन्ततः यह जनादेश केवल जीत नहीं, बल्कि जनता और सत्ता के बीच किया गया एक अनुबन्ध है—जिसका ईमानदार निर्वाह ही बिहार की भावी राजनीति की वास्तविक कसौटी होगा।

**(किशन कालजयी)**

# स्मृति, स्वप्न और यथार्थ का टकराव

**रविभूषण**

आवरण कथा

**शिक्षा और स्वास्थ्य में कभी राष्ट्रीय प्रतिष्ठा रखने वाला बिहार 1977 के बाद योजनाबद्ध पतन की ओर धकेला गया। जेपी आन्दोलन की ऐतिहासिक ऊर्जा भी अन्ततः ढहती संस्थाओं, बिगड़ती शिक्षा, पलायन, बेरोजगारी और राजनीतिक स्वार्थ के नीचे दब गयी। आज भ्रष्टाचार और अवसरवाद ने श्रम और मेधा को लगभग पस्त कर दिया है; 'सुन्दर' और 'अच्छा' बहुत कम बचा है। केवल अतीत का गौरव-गान भविष्य नहीं रचता-वर्तमान की कठोर सच्चाइयों से जूझने में ही सम्भावना है और बिहार की वास्तविक चुनौतियाँ गरीबी, बेरोजगारी, पलायन, शिक्षा, स्वास्थ्य और ठप पड़े औद्योगिक विकास में गहरी जड़ें जमाए खड़ी हैं।**

प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी ने 25 नवम्बर, 2025 को अयोध्या में राममन्दिर में ध्वजा फहराने के बाद अपने भाषण में 'केवल वर्तमान के बारे में' सोचने को न कहकर 'भविष्य के बारे में भी' सोचने की बात कही है। 'दूर दृष्टि' की बात करते हुए उन्होंने 'प्रभु राम' से सीखने की बात कही, क्योंकि 'राम यानी आदर्श, मर्यादा, जीवन का सर्वोच्च तरीका, धर्म-पथ पर चलने वाला व्यक्तित्व, ज्ञान और विवेश की पराकाष्ठा, कोमलता में दृढ़ता, सत्य का अडिग संकल्प, एक मूल्य और दिशा' हैं। अतीत के गौरव-गान, महापुरुषों का पुण्य-स्मरण और पौराणिक पात्रों की गुण-गाथा का तभी कोई अर्थ है, जब हम उनके कर्मों को अपने जीवन में लागू करें और उनके द्वारा निर्दिष्ट पथ पर चलें। जिनमें थोड़ा भी काल-बोध है, वे यह जानते हैं कि हमारा जीवन हमारे कर्म से निर्धारित होता है, न कि धर्म से, हम वर्तमान में जीते हैं, न कि अतीत में और न भविष्य में। स्मृति और स्वप्न आवश्यक है, पर यथार्थ और वास्तविकता सर्व प्रमुख है। प्रधानमन्त्री ने अपने उसी भाषण में यह कहा–"जो केवल वर्तमान का सोचते हैं, वे आने वाली पीढ़ी का अपमान करते हैं–आने वाले समय को, सदियों को ध्यान में रखना ही होगा।" दिल्ली में प्रदूषण की स्थिति भयावह है। हजारों लोग दिल्ली छोड़ रहे हैं। 1835 में मैकाले के व्यक्त विचार के 2035 में दो सौ वर्ष होंगे और 2047 में आजादी की शतवार्षिकी होगी। प्रधानमन्त्री के अनुसार हमें उस समय के बारे में सोचना चाहिए, वर्तमान के बारे में अधिक नहीं।

बिहार के अठारहवें विधान सभा चुनाव के बाद भाजपा के नेताओं और कार्यकर्ताओं में हौसला बढ़ा है। जो चुनाव जीतकर विधानसभा और लोकसभा में बैठते हैं, संविधान की शपथ लेते हैं, वे अब यह कहने से नहीं हिचकते कि संविधान और लोकतन्त्र, विदेश से आये हैं। दूसरे अवसरों पर ऐसे महापुरुष बिहार को 'लोकतन्त्र की जन्मस्थली' बताने में गौरव महसूस करते हैं कि वे वैशाली का लिच्छवी गणराज्य दुनिया का पहला गणराज्य है। उस गणराज्य का महत्त्व है, पर वह अतीत था। वर्तमान के प्रश्नों का हल वर्तमान में ही किया जाता है। बिहार का वर्तमान अतीत से केवल प्रेरणा ग्रहण कर सकता है, पर अब यह सम्भव नहीं है। धर्म-ध्वजा का इक्कीसवीं सदी में क्या कोई अर्थ है? क्रममय जगत में धर्म सदैव प्रमुख नहीं रह सकता। यह भारत को धर्म शासित राज्य (थियोक्रेटिक स्टेट) बनाने का प्रयत्न है। लोकतन्त्र के सिद्धान्तों पर आधारित राज्य को धर्म के (हिन्दू धर्म) सिद्धान्तों पर आधारित राज्य बनाने की कुचेष्टा है। बिहार के अतीत के गौरव-गान एवं महिमा-मण्डन का आज कोई अर्थ नहीं है। प्राचीन काल में बिहार राजनीति और शिक्षा का केन्द्र था। मौर्य साम्राज्य, मिथिला साम्राज्य, गुप्त राजवंश, मौर्य सम्राट अशोक, नालन्दा और विक्रमशिला, बौद्ध धर्म, जैन धर्म का अपना गौरवशाली इतिहास है, जिसका वर्तमान बिहार से कोई सम्बन्ध नहीं है। इक्कीसवीं सदी के बिहार का बीसवीं सदी के बिहार से भी सम्बन्ध नहीं रहा। 1857 का प्रथम स्वाधीनता आन्दोलन, 1915 में गाँधी की चम्पारण यात्रा, 1942 का आन्दोलन, भोजपुर में नक्सलबाड़ी आन्दोलन की चमक-

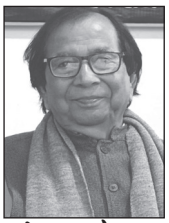

**लेखक वरिष्ठ आलोचक और जन संस्कृति मंच के पूर्व अध्यक्ष हैं।**
**+919431103960**
***ravibhushan1408@gmail.com***